दर्शनशास्त्र के साथ क्रिया पक्ष का अध्ययन

परिभाषा :

दर्शन शास्त्रः प्रमाण व प्रमाणिकता की अभिव्यक्ति ।

क्रिया पक्ष : अस्तित्व में अनुभूति की अभिव्यक्ति क्षमता ।

आधार : अस्तित्व में अनुभूति, जिज्ञासा एवं उसकी नित्य संभावना ।

अनिवार्यता: ‡1‡ सत्ता में सम्पृक्त विकासशील प्रकृति के विकास क्रम में ज्ञानावस्था का होना ।
‡2‡ ज्ञानावस्था के मनुष्य का संस्कार प्रयोग एवं अभ्यास पूर्वक अनुभव पूर्ण होना ।
‡3‡ अज्ञात को ज्ञात करने अप्राप्त को प्राप्त करने की जिज्ञासा मनुष्य में होना ।
‡4‡ समाधान समृद्धि की आकांक्षा का योग एवं उसकी संभावना का होना ।

प्रयोजन : ‡1‡ स्थिति सत्य, वस्तुस्थिति सत्य एवं वस्तुगत सत्य में अनुभूति होना ।
‡2‡ सार्वभौम सचेतना पूर्वक फलतः प्रमाणिक होना ।
‡3‡ क्रिया एवं आचरण पूर्णता तथा जीवन जागृति सिद्ध होना ।

दार्शनिक क्षमता चैतन्य प्रकृति में होने वाला गुणात्मक परिवर्तन है । विचार, चिन्तन, बोध एवं अनुभूति के रूप में दार्शनिकता का ही मनुष्य के द्वारा प्रकाशित होना पाया जाता है । दृष्टि की क्रियाशीलता एवं स्थिति के प्रति जिज्ञासा ‡संस्कार ग्राही क्षमता‡ के योगफल में असंदिग्ध रूप में दर्शन क्षमता प्रकाशित होता है । चैतन्य इकाई में ही दर्शन क्षमता का विकास क्रम, गुणात्मक रूप में दृष्टव्य है । इसका साक्ष्य अमानवीयता से मानवीयता तथा अतिमानवीयता का प्रकाशन है । मनुष्य में अधिक मूल्यों के प्रति जिज्ञासा एवं मूल्यों पर अनुशासन स्पष्ट है । अस्तु अधिक और कम मूल्यांकन के बीच दृष्टा, जिज्ञासु और नियन्ता का पद है । प्रत्येक इकाई में मूल्य होता है । वही उसका स्व-मूल एवं स्वभाव है । अस्तु मनुष्य अपने स्व-मूल्य एवं स्वभाव मूल्य का अनुभव करता है । तत्व में अनुभव होने के लिये व्यवस्था नियतिक्रम में होने के कारण मूल्य तत्व होने के कारण अनुभव होता है । अधिक के लिये अभ्यास या संस्काररत होता है । समान के साथ व्यवहार करता है । इसी क्रम में मनुष्य मनुष्येत्तर प्रकृति पर नियंत्रण पाने की स्थिति में नियन्ता का पद पाता है, जो मनुष्य की एक आवश्यकता है । मनुष्य, मनुष्य के साथ व्यवहार करने के लिये विवश है, साथ ही संवेदनशीलता एवं संज्ञानीयता के योग के फलस्वरूप प्रकाशित होता है । मनुष्य के साथ मनुष्येत्तर प्रकृति के सदृश्य नियंत्रण पाने के प्रयास में संघर्ष होता है । इससे स्पष्ट होता है कि मनुष्य मनुष्य के साथ व्यवहार करने की व्यवस्था है न कि व्यवसाय का इस प्रकार मनुष्य का व्यवहार संबंध मनुष्य के साथ जुड़ा ही है ।

क्रमशः 2/-

अस्तित्व और स्थिति में क्रिया अर्थात रूप, गुण, स्वभाव और धर्म के विकास क्रम में जीवन-धर्म की और विकास, दर्शन के लिये दृश्य संभावना है । दर्शन क्षमता न्याय-अन्याय, धर्म-अधर्म, सत्य-असत्यात्मक दृष्टियों की क्रियाशीलता के रूप में प्रमाणित होता है । प्रामाणिकता पूर्ण सत्यापन एवं उसका आकलन ही परम्परात्मक अध्ययन का तत्व है । प्रत्येक पाठ प्रमाणयुक्त होने पर ही अनुभव मूलक होता है । यह मनुष्य में होने वाली पिपासा है । ऐसे प्रमाणभूत पाठ का अध्ययन अनुभवगामी जिज्ञासा की तृप्ति का स्त्रोत सिद्ध होता है । इससे स्पष्ट होता है कि शिक्षा संस्था एवं शिक्षा परम्परा का त्राण व प्राण केवल प्रामाणिकता और उसकी समृद्धि ही है । इस प्रकार दार्शनिकता का स्वरूप प्रामाणिकता एवं समाधान के अर्थ में शिक्षा का आधार सिद्ध होना पाया जाता है । प्रामाणिकता विहिन शिक्षा का कोई अर्थ सिद्ध न होने की बात सभी समझ में है । प्रामाणिकता को अस्वीकारा नहीं किया जा सकता है । अप्रामाणिक कल्पनाएँ मनोगत वाद के रूप में है । किन्तु मनोगत वाद व्यक्तिवादिता की ही सीमा में पनप पाती है । इनका कभी विशाल रूप नहीं हो सकता । सार्वभौमता ही दर्शन तथा दर्शन ही जीवन का अर्थ सिद्ध करता है ।

नियमपूर्ण प्रयोग व व्यवसाय, न्यायपूर्ण व्यवहार व आचरण समाधान धर्म पूर्ण विचार व आशा, सत्य में अनुभव बोध, चित्रण एवं चिन्तन ही मनुष्य में प्रकाशित होने वाली प्रामाणिकता, उसकी निरंतरता एवं व्यापकता है, जो मनुष्य की अनुभूति योग्य क्षमता का प्रकाशन है । प्रत्येक मनुष्य में किसी न किसी रूप में अनुभवयोग्य क्षमता रहती है । यह चैतन्य प्रकृति में उक्त अक्षय क्रम से विकसित होकर प्रामाणिकता को प्रकाशित करती है । अनुभव आत्मा का संकल्प व बोध बुद्धि का चित्रण व चिन्तन चित्त का विचार व तुलन वृत्ति का, आस्वादन एवं चयन मन का प्रकाशन है । यही परम्परा ही मनुष्य जीवन के शिक्षा संस्कार, उत्थान एवं विकास का एक मात्र आधार है । ऐसी स्वस्थ परम्परा में ही अभ्युदय हो पाता है एवं नित्य मंगल होता है । इस प्रकार अनुभव की विशालता, प्रखरता एवं उसकी अपरिहार्यता स्पष्टतया सिद्ध होती है । दार्शनिकता अस्तित्व व जीवन के अर्थ में जीवन विकास एवं आनंद के अर्थ में चरितार्थ होता है । क्योंकि मनुष्य आनन्द के अर्थ में ही सम्पूर्ण क्रिया, आयाम, कोण व परिप्रेक्ष्य संबंधी कार्य व्यवहार व विचार करता है । यही विश्व दृष्टिकोण को स्पष्ट करता है ।

दर्शनशास्त्र के साथ क्रिया पक्ष का तात्पर्य प्रमाण एवं प्रामाणिकता की परम्परा को प्रत्यक्ष रूप में परिचय देने के अर्थ से है । प्रामाणिक वचनों को प्रामाणिक प्रामाणिकता विहीन अधिकार से प्रभावशील एवं व्यवहारिक नहीं बनाया जा सकता । इससे यह सिद्ध होता है कि प्रामाणिक वचनों का दोहराने मात्र से हम प्रामाणिक सिद्ध नहीं होंगे ।

क्रमशः 3/-

प्रामाणिकता पूर्ण (प्रयोग, व्यवहार व अनुभव) पाठ प्रामाणिक होने के लिए उत्प्रेरक अध्याय होता है । साथ ही प्रामाणिक होने का दायित्व शेष रहता है । इसका निर्वाह होना ही दर्शन के साथ क्रिया पक्ष का अभीष्ट है । इस प्रकार अप्रामाणिकता पूर्वक प्रामाणिक कथ्य का वहन एक न एक दिन निष्प्रभावित हो ही जाता है । प्रतिभा और व्यक्तित्व के संतुलन में ही प्रामाणिकता का वहन निर्बाध रूप में सिद्ध होता है तभी वह प्रबुद्धता विख्यात होता है । सम्पूर्ण प्रामाणिकता प्रयोग, व्यवहार व अनुभूति के रूप में स्पष्ट होती है । प्रयोग व व्यवहार भर अनुभव के अभाव में सम्पन्न नहीं है । इसलिए अनुभव प्रमाण परम सिद्ध है । अनुभव सत्य में ही होना पाया जाता है ।

दार्शनिक तथ्यों को भौतिक बौद्धिक (संचेतना) एवं आध्यात्मिक स्थिति में देखा जाता है । आध्यात्मिकता अस्तित्वपूर्ण वैभव के रूप में तथा बौद्धिक व भौतिकता आध्यात्मिकसत्ता में सम्पृक्त अस्तित्वशीलता विकास व विकासशीलता के रूप में है । विकासशीलता और विकासक्रम में चैतन्य प्रकृति अर्थात जीवन पद व संचेतनशीलता उसके गुणात्मक परिवर्तन क्रिया पूर्णता, आचरण पूर्णता और पूर्णता की निरंतरता की स्थिति एवं अर्थ स्पष्ट है । सत्ता में सम्पृक्त भौतिक इकाइयों के विकासपूर्वक चैतन्य पद में प्रतिष्ठित होने के कारण इनका अर्थात सत्ता व प्रकृति का अलग अलगअस्तित्व सिद्ध नहीं होता । अस्तु,

आध्यात्मिक बौद्धिक एवं भौतिक अस्तित्व सह-अस्तित्व ही है । इस प्रकार दर्शनशास्त्र के साथ क्रिया पक्ष की शैक्षिणिक उपादेयता प्रमाण व प्रमाणिकता के रूप में सिद्ध होती है ।

दर्शनशास्त्र के संबंध में "दृश्य, दर्शक एवं दर्शन" का मूल तत्व निम्नतः स्पष्ट है - अस्तित्व में ही दर्शक दृष्ट व दृश्य=सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति = सह अस्तित्व = अस्तित्वशील प्रकृति में विकासशीलता= विकास = स्थिति = क्रम = नियम नियंत्रण = प्रकाश विविधता = स्थिति = स्थिति सत्य, वस्तु अस्थिति सत्य एवं वस्तुगत सत्य = अस्तित्व = अविनाशीलता अखंडता = अस्तित्व में दर्शक, दृष्टि व दृश्य ।
अस्तित्व में दर्शक =सजग (परिष्कृत पूर्ण संचेतना सम्पन्न) इकाई = विकास क्रम में सफलता प्राप्त इकाई । सफलता क्रम = अस्तित्व पूर्ण सत्ता में स्थितिशील प्रकृति = सह अस्तित्व = सत्ता में अनन्त इकाइयों का समूह = विकासशीलता = क्रियाशीलता = श्रम, गति, परिणाम, = पूर्णता की संभावना = मात्रात्मक एवं गुणात्मक परिवर्तन = परिणाम का अमरत्व = चैतन्य पद = गुणात्मक परिवर्तन = विकास = श्रम का विश्राम = क्रिया पूर्णता = सतर्कता = समाज चेतना = मानव संचेतना = परिष्कृत संचेतना = संवेदनशीलता + संज्ञानीयता का संतुलन = व्यवहारिकता = सजगता की संभावना = कर्म व्यवहार, योगाभ्यास = गुणात्मक विकास (क्रान्ति) = आचरणपूर्णता = पूर्ण जागृति = दर्शक + दर्शन क्षमता + अप्तता = दृष्टियों की पूर्ण क्रियाशीलता = प्रामाणिकता की अभिव्यक्ति+

क्रमशः 4/-

+ आकलन = मूल्य + मूल्यांकन = अस्तित्व में दर्शन, दर्शन = ज्ञान तत्व कर्म व्यवहार मीमांसा = स्थिति सत्य, वस्तुस्थिति सत्य एवं वस्तुगत सत्य की अभिव्यक्ति + शिक्षा = मीमांसा = आप्तता = शिक्षा संस्कार परम्परा का अविरलस्रोत = आचरण पूर्णता का नित्य प्रबोधन = प्रबुद्धता = आप्त पद = अनुभूतियों की अभिव्यक्ति + आंकलन= दर्शन.

. . . . . .